IJFMR International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

मीडिया में विधवा महिलाओं का प्रतिनिधित्व: रूढ़ छवियों, सामाजिक पहचान और बदलते दृष्टिकोण का अध्ययन

देवेन्द्र कुमार[1], प्रो. ध्रुव कुमार त्रिपाठी[2]

[1]शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ
[2]विद्यांत हिंदू पीजी कॉलेज, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

सारांश

यह शोध-पत्र भारतीय मीडिया में विधवा महिलाओं के प्रतिनिधित्व का लैंगिक और सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य तर्क है कि विधवा की मीडिया-छवि लंबे समय तक शोक, त्याग, सफेद वस्त्र, यौन निषेध, सामाजिक अशुभता और पारिवारिक निर्भरता से निर्मित की गई। इस छवि ने विधवा को एक स्वतंत्र नागरिक के बजाय मृत पति से परिभाषित पहचान के रूप में स्थापित किया। शोध में गुणात्मक पाठ-विश्लेषण की पद्धति अपनाई गई है और अलग-अलग कालखंडों की दस भारतीय फिल्मों, समाचार-माध्यमों की प्रचलित फ्रेमिंग तथा डिजिटल/ओटीटी कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि पुरानी कथाओं में विधवा प्रायः पीड़िता, त्यागमयी माता, परिवार पर भार अथवा नियंत्रित स्त्री-देह के रूप में उपस्थित होती है। बाद की फिल्मों में पुनर्विवाह, महिला-मित्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, इच्छा, रंग, हास्य और आत्मनिर्णय को स्थान मिला है, किंतु कई प्रगतिशील कथाएँ अभी भी पुरुष-उद्धारक, करुणा और असाधारण प्रेरक कथा के सहारे विधवा की स्वीकार्यता निर्मित करती हैं। समकालीन ओटीटी और डिजिटल माध्यमों ने शोक की एकरूपता को चुनौती दी है, पर समाचार कवरेज में आश्रम, परित्याग और त्योहारों की दृश्यात्मकता के माध्यम से दयाभाव तथा तमाशाई दृष्टि बने रहने का जोखिम है। अध्ययन निष्कर्ष देता है कि उत्तरदायी प्रतिनिधित्व के लिए विधवा महिलाओं को विविध आयु, जाति, वर्ग, क्षेत्र, धर्म और पेशे से जुड़ी सामान्य मनुष्य के रूप में दिखाना आवश्यक है, जिनकी पहचान केवल वैवाहिक स्थिति तक सीमित नहीं है।

मुख्य शब्द: विधवा महिलाएँ, मीडिया प्रतिनिधित्व, भारतीय सिनेमा, रूढ़ छवि, सामाजिक पहचान, ओटीटी, लैंगिक समानता

1. प्रस्तावना

मीडिया केवल सामाजिक यथार्थ का दर्पण नहीं होता; वह चयन, भाषा, दृश्य, संगीत, कैमरा और कथा के माध्यम से यह भी तय करता है कि किसी समूह को समाज किस रूप में देखे। प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया अर्थ का निर्माण करती है और कुछ अर्थों को स्वाभाविक, सामान्य तथा निर्विवाद बना देती है (Hall, 1997)। विधवा महिलाओं के संदर्भ में यह प्रक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की पहचान लंबे समय तक विवाह, पति और परिवार से जोड़ी गई है। पति की मृत्यु के बाद महिला केवल शोकग्रस्त व्यक्ति नहीं मानी जाती, बल्कि उसकी वेशभूषा, भोजन, रंग, सामाजिक सहभागिता, संपत्ति, कामना और भविष्य पर भी सांस्कृतिक नियंत्रण स्थापित किया जाता रहा है। मीडिया ने कभी इन नियंत्रणों को प्रश्नांकित किया, तो कई अवसरों पर उन्हें भावुकता, धार्मिकता और पारिवारिक मर्यादा के नाम पर पुनरुत्पादित भी किया।

भारत में विधवा महिलाओं का प्रश्न जनसंख्या और मानवाधिकार दोनों स्तरों पर व्यापक है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने वर्ष 2024 की अपनी परामर्शिका में 2011 की जनगणना के आधार पर बताया कि देश में लगभग 5.6 करोड़ विधवा व्यक्ति थे और उनमें करीब 78 प्रतिशत महिलाएँ थीं। आयोग ने सामाजिक बहिष्कार, आय और आवास की हानि, संपत्ति से वंचित किए जाने, वित्तीय निर्भरता, स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य जैसी चुनौतियों को रेखांकित किया (National Human Rights Commission [NHRC], 2024)। यह संख्या संकेत करती है कि विधवा जीवन कोई सीमांत या अपवादपूर्ण अनुभव नहीं है। इसके बावजूद मुख्यधारा मीडिया में विधवा को अक्सर एक ही प्रकार की वृद्ध, गरीब, सफेद साड़ी पहने, धार्मिक नगर के आश्रम में रहने वाली महिला के रूप में दृश्यित किया जाता है। ऐसी छवि कुछ वास्तविकताओं को सामने लाती है, पर करोड़ों महिलाओं की विविधता को अदृश्य भी कर देती है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि भारतीय फिल्म, समाचार और डिजिटल माध्यम विधवा महिलाओं की छवि कैसे बनाते हैं; कौन-से रूढ़ संकेत बार-बार दोहराए जाते हैं; और नई कथाओं में सामाजिक पहचान, इच्छा, आर्थिक अधिकार तथा आत्मनिर्णय के कौन-से रूप उभर रहे हैं। अध्ययन किसी एक माध्यम को दोषी या मुक्त घोषित नहीं करता। इसका प्रयास प्रतिनिधित्व के भीतर मौजूद निरंतरता, विरोधाभास और बदलाव को पहचानना है।

2. अध्ययन की पृष्ठभूमि और समस्या

विधवा जीवन का अनुभव केवल पति की मृत्यु से उत्पन्न भावनात्मक क्षति नहीं है। यह अनुभव आयु, जाति, वर्ग, धर्म, ग्रामीण-शहरी स्थिति, शिक्षा, संतान, संपत्ति और परिवार की संरचना के अनुसार बदलता है। ग्रामीण भारत पर किए गए अध्ययनों ने दिखाया है कि विधवा महिलाओं की स्थिति को केवल परिवार की औसत आय से नहीं समझा जा सकता; भोजन, संसाधन-वितरण, निवास, श्रम और निर्णयकारी अधिकार जैसे पहलू भी महत्वपूर्ण हैं (Drèze & Srinivasan, 1997)। Chen (2000) ने ग्रामीण भारत में विधवापन को “स्थायी शोक” की सामाजिक व्यवस्था के रूप में समझाया, जिसमें महिला से पति की मृत्यु के बाद भी आजीवन प्रतीकात्मक निष्ठा और आत्म-संयम की अपेक्षा की जाती है। Jensen

(2005) ने यह भी स्पष्ट किया कि जाति-संस्कृति और पुनर्विवाह की स्वीकृति विधवा महिलाओं के कल्याण को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती है।

मीडिया में यह जटिलता अक्सर संक्षिप्त संकेतों में बदल जाती है। सफेद साड़ी, टूटी चूड़ियाँ, मिटा हुआ सिंदूर, धीमा संगीत, अंधेरा कमरा, नीचे झुकी दृष्टि और उत्सव से दूरी कुछ ही क्षणों में दर्शक को बता देते हैं कि पात्र विधवा है। ये संकेत कथात्मक सुविधा प्रदान करते हैं, पर वे विधवा जीवन को शोक और निषेध की स्थायी अवस्था में बंद कर सकते हैं। Tuchman (1978) ने महिलाओं की अनुपस्थिति और संकुचित प्रस्तुति को "प्रतीकात्मक विनाश" से जोड़ा था। विधवा पात्रों के मामले में यह विनाश दो रूप लेता है: अनेक विधवा महिलाएँ कथा से पूरी तरह अनुपस्थित रहती हैं, और जो उपस्थित होती हैं उन्हें कुछ सीमित भूमिकाओं में समेट दिया जाता है।

समस्या का दूसरा पक्ष "प्रगतिशील" प्रस्तुति है। कई फिल्में विधवा पुनर्विवाह अथवा रंगीन जीवन का समर्थन करती हैं, किंतु परिवर्तन का केंद्र प्रायः संवेदनशील पुरुष पात्र होता है। इस संरचना में महिला की मुक्ति उसके अपने निर्णय, समुदाय, रोजगार या अधिकार से कम और पुरुष की नैतिक उदारता से अधिक संभव दिखाई देती है। इसलिए सकारात्मक संदेश के बावजूद एजेंसी का प्रश्न बना रहता है।

3. सैद्धांतिक आधार

अध्ययन तीन परस्पर संबंधित अवधारणाओं पर आधारित है। पहली अवधारणा प्रतिनिधित्व की है। Hall (1997) के अनुसार मीडिया वस्तुओं और व्यक्तियों का निष्पक्ष प्रतिबिंब नहीं देता, बल्कि भाषा और संकेतों के माध्यम से उनके अर्थ निर्मित करता है। अतः "विधवा" जैविक या कानूनी वैवाहिक स्थिति मात्र नहीं रहती; मीडिया उसे पवित्रता, अभाव, बोझ, खतरे, करुणा या संघर्ष जैसे अर्थों से जोड़ता है।

दूसरी अवधारणा दृष्टि और दृश्य-शक्ति की है। Mulvey (1975) ने मुख्यधारा सिनेमा में पुरुष-दृष्टि की चर्चा करते हुए बताया कि महिला को सक्रिय कथाकार की तुलना में देखने योग्य वस्तु के रूप में व्यवस्थित किया जाता है। विधवा पात्र के संदर्भ में यह दृष्टि केवल यौन वस्तुकरण नहीं करती; कई बार वह स्त्री-देह को "अयौन" घोषित कर उसे रंग, सौंदर्य, इच्छा और पुनः संबंध बनाने के अधिकार से वंचित करती है। इस प्रकार देह का वस्तुकरण और देह का निषेध दोनों पितृसत्तात्मक नियंत्रण के रूप हो सकते हैं।

तीसरी अवधारणा अंतर्संबंधता है। विधवा महिलाओं की छवि केवल लिंग से निर्धारित नहीं होती। जाति, वर्ग, उम्र, धर्म और क्षेत्र मिलकर उनकी दृश्यता तथा कथा-भूमिका तय करते हैं। Rudaali में शोक और जीविका जाति-वर्ग से जुड़ते हैं; Water में धर्म, बाल-विवाह और आश्रम व्यवस्था प्रमुख हैं; Pagglait में युवा मध्यवर्गीय परिवार, बीमा धन और घरेलू निर्णय केंद्रीय बनते हैं। अतः सभी विधवा पात्रों को एक समान श्रेणी मानना विश्लेषण को अधूरा करेगा।

4. अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं: (1) भारतीय मीडिया में विधवा महिलाओं से जुड़ी प्रमुख रूढ़ छवियों की पहचान करना; (2) वेशभूषा, शोक, कामना, परिवार, अर्थव्यवस्था और पुनर्विवाह से संबंधित दृश्य तथा कथात्मक संकेतों का विश्लेषण करना; (3) पुराने और समकालीन मीडिया-पाठों में सामाजिक पहचान तथा महिला-एजेंसी के बदलाव की तुलना करना; और (4) समाचार एवं डिजिटल माध्यमों के लिए सम्मानजनक तथा अधिकार-आधारित प्रतिनिधित्व के सुझाव प्रस्तुत करना।

5. शोध पद्धति

यह गुणात्मक, व्याख्यात्मक और तुलनात्मक अध्ययन है। उद्देश्यपूर्ण चयन द्वारा दस भारतीय फिल्मों को लिया गया, जिनमें अलग-अलग दशकों, भाषाई क्षेत्रों और कथा-शैलियों में विधवा पात्र केंद्रीय या अत्यंत महत्वपूर्ण है। चयनित फिल्में हैं: Prem Rog (1982), Ek Chadar Maili Si (1986), Rudaali (1993), Swet Patharer Thala (1992), Chokher Bali (2003), Water (2005), Dor (2006), Baabul (2006), The Last Color (2019) और Pagglait (2021)। साथ ही विधवा आश्रमों, त्योहारों, पेंशन, परित्याग और मानवाधिकार से संबंधित समाचार-फ्रेमिंग पर उपलब्ध आधिकारिक तथा शैक्षणिक साहित्य का विषयगत पठन किया गया।

विश्लेषण के लिए छह कोड-श्रेणियाँ निर्धारित की गईं: (i) दृश्य पहचान और वेशभूषा, (ii) शोक तथा भावनात्मक अभिव्यक्ति, (iii) परिवार और सामाजिक संबंध, (iv) आर्थिक अधिकार और श्रम, (v) इच्छा, पुनर्विवाह और देह पर नियंत्रण, तथा (vi) एजेंसी और कथा का अंतिम समाधान। प्रत्येक फिल्म को इन श्रेणियों के आधार पर पढ़ा गया। यह अध्ययन दर्शक-सर्वेक्षण या सामग्री की सांख्यिकीय आवृत्ति प्रस्तुत नहीं करता, इसलिए इसके निष्कर्ष व्याख्यात्मक हैं और चयनित पाठों तक सीमित हैं।

तालिका 1
चयनित फिल्मों में विधवा प्रतिनिधित्व का प्रमुख स्वरूप

फिल्म	वर्ष	प्रमुख प्रतिनिधित्व	आलोचनात्मक संकेत
Prem Rog	1982	युवा विधवा पर सामाजिक नियंत्रण; पुनर्विवाह	सुधारवादी संदेश, पर पुरुष-उद्धारक प्रमुख
Ek Chadar Maili Si	1986	परिवार द्वारा पुनर्विवाह की व्यवस्था	सहमति और समुदाय के दबाव की जटिलता
Swet Patharer Thala	1992	श्वेत जीवन, परिवार और सामाजिक निषेध	आत्मसम्मान और बदलती घरेलू भूमिका

फिल्म	वर्ष	प्रमुख प्रतिनिधित्व	आलोचनात्मक संकेत
Rudaali	1993	विधवा, जाति, वर्ग और शोक	भावनात्मक श्रम तथा जीविका का संबंध
Chokher Bali	2003	विधवा की इच्छा और नैतिक निगरानी	जटिल एजेंसी, पर दंडात्मक दृष्टि
Water	2005	आश्रम, तपस्या और शोषण	संस्थागत पितृसत्ता और प्रतिरोध
Dor	2006	रंगहीनता और नियंत्रित जीवन	महिला-मित्रता, यात्रा और आत्मनिर्णय
Baabul	2006	परिवार और पुनर्विवाह	सामाजिक सुधार, पर पुरुष स्वीकृति केंद्रीय
The Last Color	2019	रंग-वर्जना और सामाजिक दूरी	उत्सव, रंग और सार्वजनिक उपस्थिति का अधिकार
Pagglait	2021	अनिवार्य शोक और पारिवारिक अपेक्षा	वित्तीय निर्णय, बहुविध भावनाएँ और स्वायत्तता

नोट. तालिका में उल्लिखित श्रेणियाँ इस अध्ययन के गुणात्मक पाठ-विश्लेषण पर आधारित हैं।

6. मीडिया-पाठों का विश्लेषण

6.1 शोक, त्याग और "अशुभता" की स्थायी छवि

पुराने और लोकप्रिय कथानकों में विधवा की पहचान का पहला दृश्य संकेत रंगहीनता है। सफेद वस्त्र, आभूषणों का त्याग, सिंदूर का मिटना और बालों-सौंदर्य की उपेक्षा यह संदेश देते हैं कि पति की मृत्यु के साथ महिला का सामाजिक जीवन भी समाप्त हो गया। Prem Rog में युवा विधवा की पीड़ा सामाजिक रीति और पारिवारिक नियंत्रण से जुड़ती है। फिल्म विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करती है, फिर भी लंबे समय तक उसका शरीर समुदाय की "इज्जत" और पवित्रता का क्षेत्र बना रहता है। Water इस नियंत्रण को और अधिक कठोर रूप में दिखाती है, जहाँ आश्रम की महिलाएँ भोजन, वस्त्र, कामना और गतिशीलता पर संस्थागत नियंत्रण झेलती हैं। Somacarrera-Íñigo (2021) के अनुसार फिल्म विधवा मुक्ति के राष्ट्रवादी और धार्मिक दावों के भीतर मौजूद सीमाओं को उजागर करती है।

समाचार माध्यमों में भी सफेद साड़ी वाली सामूहिक छवि प्रबल है। वृंदावन या वाराणसी की विधवाओं पर रिपोर्टें आवश्यक सामाजिक ध्यान उत्पन्न करती हैं, लेकिन जब कैमरा बार-बार केवल भीड़, आँसू, भिक्षा या त्योहार में रंग खेलती महिलाओं पर केंद्रित होता है, तब व्यक्ति की जीवनी, कौशल, संपत्ति विवाद, श्रम और राजनीतिक मांगें पीछे छूट सकती हैं। पीड़ा की दृश्यात्मकता दर्शक में क्षणिक सहानुभूति पैदा करती है, पर अधिकार-आधारित समझ आवश्यक रूप से नहीं बनाती।

6.2 पीड़िता, देवी और सामाजिक बोझ के बीच

विधवा पात्र को अक्सर दो विपरीत सिरों पर रखा जाता है। एक ओर वह असहाय पीड़िता है, जिसे संरक्षण चाहिए; दूसरी ओर वह त्यागमयी, लगभग देवी-समान माता है, जो अपनी इच्छाओं को समाप्त कर परिवार के लिए जीती है। दोनों रूपों में महिला की साधारण मनुष्यता सीमित होती है। वह क्रोधित, हास्यपूर्ण, महत्वाकांक्षी, भ्रमित, प्रेमपूर्ण या स्वार्थी हो सकती है, पर पारंपरिक कथा उसे नैतिक आदर्श अथवा करुणा-पात्र के रूप में स्थिर करती है। Kaur (2022) ने हिंदी सिनेमा में विधवापन की प्रस्तुति को नकारात्मकता से आत्मनिर्णय की ओर बढ़ती प्रक्रिया माना है, किंतु यह परिवर्तन पूर्ण नहीं है। Ek Chadar Maili Si सामाजिक बोझ और पारिवारिक व्यवस्था की जटिलता को सामने लाती है। यहाँ पुनर्विवाह रोमानी स्वतंत्रता के बजाय परिवार और समुदाय की व्यवस्था से निर्धारित होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पुनर्विवाह अपने-आप में मुक्ति का पर्याय नहीं है; निर्णय की शर्तें और महिला की सहमति अधिक महत्वपूर्ण हैं। Baabul में परिवार विधवा के पुनर्विवाह का समर्थन करता है, लेकिन समाधान मुख्यतः उदार पिता-समान पुरुष और प्रेमी की पहल से आता है। फिल्म सामाजिक सुधार का संदेश देती है, पर महिला की मुक्ति को पुरुष स्वीकृति से वैध बनाती है।

6.3 इच्छा, देह और नैतिक निगरानी

विधवा की कामना भारतीय मीडिया में सबसे विवादित विषयों में रही है। Chokher Bali की बिनोदिनी शिक्षित, आकर्षक, इच्छाशील और रणनीतिक पात्र है। उसकी जटिलता पारंपरिक "निष्काम विधवा" की छवि को तोड़ती है, किंतु कथा और दर्शकीय नैतिकता उसे बार-बार संदेह, अपराध और दंड से जोड़ते हैं। यह द्वंद्व बताता है कि मीडिया विधवा की इच्छा को स्वीकार करते हुए भी उससे भयभीत रहता है। Mulvey (1975) की दृष्टि से देखें तो विधवा पात्र को कभी देखने योग्य आकर्षक देह, कभी सामाजिक रूप से निषिद्ध देह और कभी परिवार के लिए खतरा बनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

Water में क़लयाणी की सुंदरता आर्थिक और यौन शोषण का माध्यम बना दी जाती है। उसका शरीर धार्मिक तपस्या का प्रतीक भी है और आश्रम की आय का स्रोत भी। यह विरोधाभास दिखाता है कि पवित्रता का सार्वजनिक दावा निजी शोषण को छिपा सकता है। दूसरी ओर Pagglait में युवा विधवा संध्या का भूख लगना, मोबाइल देखना, पुरानी प्रेमिका से मिलना और अपेक्षित ढंग से न रो पाना शोक की तय पटकथा को चुनौती देता है। फिल्म विधवा को "असामान्य" इसलिए नहीं मानती कि वह दुखी है, बल्कि इसलिए कि वह समाज द्वारा निर्धारित दुख का प्रदर्शन नहीं करती। Thakur (2021) ने इस फिल्म में महिला-मित्रता और बहनापे को आत्मपहचान की प्रक्रिया से जोड़ा है।

6.4 आर्थिक निर्भरता से वित्तीय निर्णय तक

मीडिया में विधवा की आर्थिक स्थिति लंबे समय तक पृष्ठभूमि में रही। वह गरीब दिखाई देती है, पर गरीबी की संस्थागत वजहें, जैसे संपत्ति से बेदखली, उत्तराधिकार, बैंक खाते, पेंशन, रोजगार और अवैतनिक देखभाल, विस्तार से नहीं दिखाई जातीं। NHRC (2024) ने संपत्ति तक समान पहुँच, घर से निष्कासन की रोकथाम, बैंकिंग, कौशल और टिकाऊ

आजीविका को विधवा अधिकारों के प्रमुख क्षेत्र बताया है। जब मीडिया केवल दान और आश्रय को समाधान दिखाता है, तब वह नागरिक अधिकारों की जगह परोपकार को केंद्र में रखता है।

Rudaali इस प्रवृत्ति से अलग उदाहरण है। शानिचरी का शोक व्यक्तिगत अनुभव होने के साथ श्रम और जीविका भी बनता है। पेशेवर रुदाली के रूप में उसका भावनात्मक श्रम सामंती वर्ग-संरचना को उजागर करता है। विधवा महिला यहाँ निष्क्रिय आश्रित नहीं, श्रम करने वाली स्त्री है, यद्यपि उसका श्रम शोषणपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में स्थित है। Pagglait में बीमा राशि कथा का निर्णायक तत्व बनती है। संध्या का अंतिम निर्णय यह संकेत देता है कि वित्तीय संसाधन महिला की गतिशीलता और आत्मनिर्णय को बदल सकते हैं। फिर भी फिल्म यह भी दिखाती है कि परिवार महिला को व्यक्ति से पहले धन के स्रोत के रूप में देखने लगता है।

6.5 महिला-मित्रता और सामूहिक सहारा

कई पारंपरिक कथाओं में विधवा का उद्धार किसी आदर्श पुरुष से जुड़ा होता है। नई फिल्मों में महिला-मित्रता और साझा अनुभव अधिक महत्वपूर्ण हुए हैं। Dor की मीरा दूसरी महिला ज़ीनत के संपर्क में आकर भय, रूढ़ि और नियंत्रित जीवन से बाहर आने की संभावना देखती है। इस कथा में परिवर्तन केवल प्रेम-संबंध से नहीं, बल्कि महिलाओं के बीच संवाद, सहानुभूति और जोखिम-साझेदारी से आता है। Pagglait में नाज़िया के साथ संध्या की मित्रता उसे अपने विवाह, पति और स्वयं के बारे में नया दृष्टिकोण देती है। Thakur (2021) इसे सामूहिकता और महिला-समर्थन की मुक्ति-दृष्टि से पढ़ती हैं।

हालाँकि बहनापा भी एक समान अनुभव नहीं है। परिवार की महिलाएँ कभी नियंत्रण का माध्यम बनती हैं, कभी सुरक्षा का। जाति, उम्र और आर्थिक स्थिति महिलाओं के बीच शक्ति-अंतर पैदा करती है। इसलिए सभी महिला संबंधों को स्वाभाविक रूप से सहायक मानना भी एक नई रूढ़ि बन सकता है। उत्तरदायी कथा को सहयोग और संघर्ष दोनों दिखाने चाहिए।

6.6 रंग, उत्सव और सामान्य जीवन की वापसी

The Last Color विधवा जीवन से रंग के निष्कासन को केंद्रीय प्रतीक बनाती है। रंग यहाँ केवल सौंदर्य नहीं, सार्वजनिक जीवन, आनंद और सामाजिक उपस्थिति का अधिकार है। आधुनिक समाचार कवरेज में होली खेलती विधवाओं की तस्वीरें "परंपरा टूटने" का शक्तिशाली दृश्य बनती हैं। यह परिवर्तन सकारात्मक है, पर मीडिया को यह पूछना चाहिए कि क्या रंग खेलने की एक दिन की स्वतंत्रता संपत्ति, स्वास्थ्य, सुरक्षा और निवास के अधिकार में भी बदलती है। रंगीन तस्वीरें संरचनात्मक प्रश्नों का विकल्प नहीं बन सकतीं।

समकालीन कथाओं का महत्वपूर्ण योगदान यह है कि वे विधवा को केवल विधवापन पर आधारित कथा में बंद नहीं करतीं। वह नौकरी कर सकती है, मित्र बना सकती है, यात्रा कर सकती है, पुनर्विवाह कर सकती है या न करने का निर्णय ले सकती है। उसकी पहचान मां, कर्मचारी, कलाकार, किसान, नागरिक, प्रेमिका, पड़ोसी और राजनीतिक व्यक्ति के रूप में भी हो सकती है। सामाजिक पहचान का यह विस्तार प्रतिनिधित्व में वास्तविक बदलाव का संकेत है।

6.7 ओटीटी, डिजिटल मीडिया और बदलती दर्शकीय अपेक्षाएँ

ओटीटी माध्यम ने विषय, भाषा और कथा-गति में कुछ स्वतंत्रता प्रदान की है। Pagglait जैसी फिल्म शोक को भारी मेलोड्रामा के बजाय व्यंग्य, घरेलू असहजता और शांत आत्मखोज के माध्यम से प्रस्तुत करती है। यह शैली दर्शक को बताती है कि मृत्यु के बाद प्रतिक्रिया एकरूप नहीं होती। कोई महिला रो सकती है, सुन्न हो सकती है, राहत महसूस कर सकती है, अपराधबोध झेल सकती है या अपने विवाह को नए सिरे से समझ सकती है। जटिल भावनाएँ चरित्र को अधिक मानवीय बनाती हैं।

डिजिटल मीडिया ने विधवा महिलाओं को स्वयं बोलने, संगठन बनाने, अधिकार संबंधी सूचना साझा करने और मुख्यधारा फ्रेमिंग को चुनौती देने के अवसर भी दिए हैं। साथ ही एल्गोरिदमिक दृश्यता अक्सर अत्यधिक भावुक, चौंकाने वाले या "प्रेरणादायक" वीडियो को बढ़ावा देती है। इससे विधवा महिला या तो दया-पात्र बन सकती है या ऐसी असाधारण नायिका, जिससे हर परिस्थिति में साहस और सफलता की अपेक्षा की जाए। दोनों स्थितियाँ साधारण जीवन के अधिकार को कम करती हैं।

7. तुलनात्मक निष्कर्ष

चयनित मीडिया-पाठों में समय के साथ चार प्रमुख बदलाव दिखाई देते हैं। पहला, पहचान में बदलाव है: पुरानी कथा में महिला "किसी की विधवा" थी; नई कथा उसे नाम, इच्छा और भविष्य देती है। दूसरा, शोक की भाषा में बदलाव है: अनिवार्य मौन और तपस्या की जगह बहुविध भावनाएँ दिखाई देने लगी हैं। तीसरा, समाधान में बदलाव है: पुरुष-उद्धारक और विवाह के साथ-साथ रोजगार, मित्रता, धन, यात्रा और स्वनिर्णय भी कथा के विकल्प बने हैं। चौथा, दृश्य संकेतों में बदलाव है: सफेद वस्त्र और रंग-वर्जना पर प्रश्न उठे हैं।

फिर भी निरंतरताएँ स्पष्ट हैं। युवा और सुंदर विधवा को अधिक कथा-स्थान मिलता है, जबकि वृद्ध, विकलांग, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, ग्रामीण और यौन अल्पसंख्यक विधवा महिलाओं की जटिलता बहुत कम दिखाई देती है। पुनर्विवाह को प्रगतिशील अंत माना जाता है, पर अविवाहित रहकर सम्मानपूर्वक जीवन चुनने वाली महिला की कथा कम है। आर्थिक अधिकारों की तुलना में भावनात्मक और रोमानी संघर्ष अधिक दृश्य हैं। इस प्रकार प्रतिनिधित्व बदला है, किंतु विविधता और संरचनात्मक न्याय अभी अधूरे हैं।

तालिका 2

पारंपरिक और समकालीन प्रतिनिधित्व की तुलना

आयाम	पारंपरिक प्रवृत्ति	समकालीन बदलाव
पहचान	मृत पति से परिभाषित; नाम और पेशा गौण	स्वतंत्र व्यक्तित्व, काम और भविष्य पर जोर

आयाम	पारंपरिक प्रवृत्ति	समकालीन बदलाव
शोक	स्थायी रोदन, मौन और तपस्या	शोक की बहुविध तथा विरोधाभासी प्रतिक्रियाएँ
वेशभूषा	सफेद रंग, आभूषण-वर्जना, सौंदर्य निषेध	रंग, सामान्य पहनावा और व्यक्तिगत पसंद
समाधान	पुरुष संरक्षण, परिवार की स्वीकृति या बलिदान	मित्रता, रोजगार, वित्तीय निर्णय, यात्रा और आत्मनिर्णय
कामना	खतरा, अपराध या निषिद्ध विषय	इच्छा की स्वीकृति बढ़ी, लेकिन नैतिक निगरानी शेष
अर्थव्यवस्था	दान, आश्रय या निर्भरता	संपत्ति, बीमा, श्रम और बैंकिंग की आंशिक दृश्यता

8. चर्चा

मीडिया की शक्ति इस बात में है कि वह निजी अनुभव को सार्वजनिक भाषा देता है। जब फिल्म विधवा के सिर से रंग, इच्छा और आवाज़ हटाती है, तो वह सामाजिक अनुशासन को सामान्य बना सकती है। जब वही फिल्म महिला को निर्णय लेते, काम करते और विरोध करते दिखाती है, तो वह कल्पना की नई संभावनाएँ खोलती है। लेकिन केवल "सकारात्मक" छवि पर्याप्त नहीं है। एक हमेशा मजबूत, साहसी और सफल विधवा भी उतनी ही कृत्रिम हो सकती है जितनी हमेशा रोती हुई विधवा। सम्मानजनक प्रतिनिधित्व का अर्थ नैतिक आदर्श बनाना नहीं, बल्कि जटिल मनुष्य दिखाना है।

विधवा महिला की मीडिया-छवि का मूल्यांकन करते समय यह देखना चाहिए कि कैमरा किसकी दृष्टि अपनाता है, संवाद में निर्णय किसका है, आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण किसके पास है, और कथा का अंत किस परिवर्तन को वैध ठहराता है। यदि पुनर्विवाह दिखाया गया है तो क्या महिला की सहमति और इच्छा केंद्र में है? यदि आश्रम दिखाया गया है तो क्या निवास और संपत्ति से वंचित करने वाली संस्थाएँ भी दिखती हैं? यदि त्योहार में रंग दिखाया गया है तो क्या दैनिक जीवन की स्वतंत्रता पर भी बात होती है? यही प्रश्न दयाभाव को अधिकार-दृष्टि में बदलते हैं।

सरकारी और मानवाधिकार दस्तावेज़ों ने पहचान-पत्र, संपत्ति, आश्रय, आजीविका, बैंकिंग, स्वास्थ्य और सामुदायिक नेटवर्क को आवश्यक माना है (NHRC, 2024)। मीडिया इन क्षेत्रों को कथाओं और रिपोर्टिंग में शामिल करके विधवा जीवन को व्यक्तिगत त्रासदी से आगे सामाजिक न्याय के प्रश्न के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। UN Women (2014) ने भी विधवा महिलाओं के विरुद्ध कलंक, संसाधनों की कमी और उत्तराधिकार भेदभाव पर ध्यान दिलाया है। अतः प्रतिनिधित्व का उद्देश्य केवल सहानुभूति नहीं, जवाबदेही और समान नागरिकता होना चाहिए।

9. मीडिया के लिए सुझाव

पहला, विधवा महिला की पहचान को वैवाहिक स्थिति तक सीमित न किया जाए। रिपोर्ट या कथा में उसका नाम, पेशा, शिक्षा, रुचि, समुदाय, निर्णय और जीवन-इतिहास सामने आए। दूसरा, सफेद साड़ी, रोती आँखें और आश्रम की भीड़ जैसे तैयार दृश्य-संकेतों का यांत्रिक उपयोग कम किया जाए। तीसरा, पुनर्विवाह को एकमात्र मुक्ति न माना जाए; पुनर्विवाह, अकेले जीवन, सहजीवन, परिवार के साथ निवास या स्वतंत्र आवास सभी विकल्प महिला की इच्छा से जुड़े हों।

चौथा, समाचार रिपोर्टिंग में पेंशन और दान से आगे संपत्ति, उत्तराधिकार, दस्तावेज़, बैंकिंग, श्रम, स्वास्थ्य, हिंसा और कानूनी सहायता को स्थान दिया जाए। पाँचवाँ, विधवा महिलाओं को केवल विषय नहीं, स्रोत, लेखक, सलाहकार और रचनात्मक निर्णयकर्ता बनाया जाए। छठा, क्षेत्रीय, धार्मिक, जातीय, आयु और वर्गीय विविधता दिखाई जाए। सातवाँ, डिजिटल सामग्री में सहमति, गरिमा और गोपनीयता का पालन हो; दुखद दृश्य या निजी शोक को क्लिक और वायरलता के लिए न बेचा जाए।

10. अध्ययन की सीमाएँ

यह अध्ययन उद्देश्यपूर्ण रूप से चुनी गई फिल्मों और उपलब्ध द्वितीयक साहित्य पर आधारित है। इसमें टेलीविजन धारावाहिकों, क्षेत्रीय भाषाओं की समस्त फिल्मों, सोशल मीडिया पोस्टों अथवा समाचार सामग्री की सांख्यिकीय गणना नहीं की गई। दर्शकों द्वारा विधवा पात्रों की व्याख्या अलग हो सकती है, जिसका आकलन इस शोध में नहीं किया गया। भविष्य के अध्ययन सामग्री-विश्लेषण, दर्शक-साक्षात्कार, विधवा महिलाओं के फोकस समूह और मीडिया-निर्माताओं के साक्षात्कार के माध्यम से अधिक व्यापक निष्कर्ष दे सकते हैं।

11. निष्कर्ष

भारतीय मीडिया में विधवा महिलाओं का प्रतिनिधित्व एक उल्लेखनीय संक्रमण से गुजर रहा है। सफेद वस्त्र, मौन, त्याग, अशुभता और पुरुष-निर्भरता की पुरानी छवियाँ अभी समाप्त नहीं हुई हैं, किंतु उनके साथ नई छवियाँ भी उभरी हैं जिनमें महिला इच्छा व्यक्त करती है, आर्थिक निर्णय लेती है, महिला-मित्रता से शक्ति प्राप्त करती है, रंग और सार्वजनिक जीवन वापस मांगती है तथा शोक को अपने ढंग से जीती है। यह बदलाव विशेष रूप से समकालीन सिनेमा और ओटीटी कथाओं में दिखाई देता है।

फिर भी वास्तविक प्रगति तब होगी जब विधवा पात्र को असाधारण दया-पात्र या प्रेरक नायिका बनाए बिना सामान्य नागरिक के रूप में दिखाया जाए। उसकी गरिमा का आधार त्याग, पवित्रता या किसी पुरुष की स्वीकृति नहीं, बल्कि समान अधिकार और स्वयं की इच्छा हो। मीडिया जब विविध विधवा जीवन को नाम, आवाज़, पेशा, संपत्ति, हास्य, कामना, विरोध और भविष्य के साथ प्रस्तुत करेगा, तभी सामाजिक पहचान का दायरा वैवाहिक स्थिति से आगे बढ़ सकेगा।

संदर्भ सूची

1. Banaji, S. (2006). Reading Bollywood: The young audience and Hindi films. Palgrave Macmillan.
2. Bist, U. (Director). (2021). Pagglait [Film]. Balaji Motion Pictures; Sikhya Entertainment.
3. Butler, J. (1990). Gender trouble: Feminism and the subversion of identity. Routledge.
4. Chakravarty, S. S. (1993). National identity in Indian popular cinema, 1947–1987. University of Texas Press.
5. Chen, M. A. (2000). Perpetual mourning: Widowhood in rural India. Oxford University Press.
6. Dhadda, S. (Director). (1986). Ek Chadar Maili Si [Film]. Neelam International Films.
7. Drèze, J., & Srinivasan, P. V. (1997). Widowhood and poverty in rural India: Some inferences from household survey data. Journal of Development Economics, 54(2), 217–234. https://doi.org/10.1016/S0304-3878(97)00041-2
8. Dwyer, R., & Patel, D. (2002). Cinema India: The visual culture of Hindi film. Rutgers University Press.
9. Ghosh, R. (Director). (2003). Chokher Bali [Film]. Shree Venkatesh Films.
10. Gill, R. (2007). Gender and the media. Polity.
11. Hall, S. (Ed.). (1997). Representation: Cultural representations and signifying practices. Sage.
12. Jain, J., & Rai, S. (Eds.). (2002). Films and feminism: Essays in Indian cinema. Rawat Publications.
13. Jensen, R. T. (2005). Caste, culture, and the status and well-being of widows in India. In D. A. Wise (Ed.), Analyses in the economics of aging (pp. 357–376). University of Chicago Press. https://doi.org/10.7208/chicago/9780226903217.003.0012
14. Kaur, S. P. (2022). From negative to generative paradigm: Tracing the transitory edifice of widowhood in Hindi cinema. Electronic International Interdisciplinary Research Journal, 11(3), 240–248.
15. Khanna, V. (Director). (2019). The Last Color [Film]. House of Omkar.
16. Kukunoor, N. (Director). (2006). Dor [Film]. Percept Picture Company.
17. Lajmi, K. (Director). (1993). Rudaali [Film]. NFDC; Plus Films.
18. Lamb, S. (1999). Aging, gender and widowhood: Perspectives from rural West Bengal. Contributions to Indian Sociology, 33(3), 541–570.
19. Mehta, D. (Director). (2005). Water [Film]. David Hamilton Productions.
20. Mulvey, L. (1975). Visual pleasure and narrative cinema. Screen, 16(3), 6–18. https://doi.org/10.1093/screen/16.3.6
21. National Human Rights Commission. (2024, June 12). NHRC issues an advisory on the protection of human rights of widows. https://nhrc.nic.in/media/press-release/nhrc-issues-an-advisory-on-the-protection-human-rights-the-widows
22. Press Information Bureau. (2016, June 7). A ray of hope for widows. Government of India. https://www.pib.gov.in/newsite/printrelease.aspx?relid=146020
23. Prasad, M. M. (1998). Ideology of the Hindi film: A historical construction. Oxford University Press.
24. Roy, P. (Director). (1992). Swet Patharer Thala [Film]. R. D. Bansal Productions.
25. Somacarrera-Íñigo, P. (2021). “Is Gandhi the hero?”: A reappraisal of Gandhi’s views about women in Deepa Mehta’s Water. Indialogs, 8, 27–47.
26. Tandon, R. (Director). (1982). Prem Rog [Film]. R. K. Films.

27. Thakur, S. (2021). Locating female solidarity and sisterhood in Pagglait (2021). The Criterion: An International Journal in English, 12(4), 350–360.
28. Tuchman, G. (1978). The symbolic annihilation of women by the mass media. In G. Tuchman, A. K. Daniels, & J. Benét (Eds.), Hearth and home: Images of women in the mass media (pp. 3–38). Oxford University Press.
29. UN Women. (2014, December 3). Widows continue to face severe stigma and discrimination. https://asiapacific.unwomen.org/en/news-and-events/stories/2014/12/widows-continue-to-face-severe-stigma-and-discrimination